The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 3 | Issue 6 | June 2025
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

जागीरदारी व्यवस्था का उद्भव और विकास

Ashish Dhakad

Research Scholar in Jiwaji University Gwalior, Research centre- MLB Govt College of Excellence Gwalior Madhya Pradesh, Email- dhakada75@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.15861760

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 29-06-2025

Published: 10-07-2025

Keywords:

सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक व्यवस्था, जागीरदारी, अर्थव्यवस्था

ABSTRACT

जागीरदारी व्यवस्था मध्यकालीन भारत की एक मुख्य सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक व्यवस्था थी, जिसने सामंती ढांचे को मजबूत किया। यह शोध पत्र जागीरदारी के शुरू होने, इसके विकास और समाज-अर्थव्यवस्था पर इसके असर को आसान और गहराई से समझाने पर केंद्रित है। इस शोध पत्र में दिल्ली सल्तनत की इक्ता व्यवस्था से लेकर मुगल काल की जागीरदारी तक की व्यवस्था की विवेचना की गई है। शोध का उद्देश्य यह जानना है कि यह व्यवस्था कैसे शुरू हुई, अलग-अलग क्षेत्रों में इसका रूप कैसा रहा और इसका लंबे समय तक क्या प्रभाव पड़ा। पुराने दस्तावेजों, फरमानों और इतिहासकारों की किताबों के आधार पर यह अध्ययन किया गया है। जागीरदारी व्यवस्था की शुरुआत सेना और शासन की जरूरतों से हुई। दिल्ली सल्तनत में इसे इक्ता कहा जाता था, जो मुगल काल में मनसबदारी के साथ बदल गया। अकबर ने इसे और व्यवस्थित किया, लेकिन औरंगजेब के समय इसकी कमजोरियाँ सामने आईं। मध्यप्रदेश, बंगाल, राजस्थान और दक्कन जैसे क्षेत्रों में जागीरदारी का रूप स्थानीय परंपराओं और सत्ता के आधार पर अलग-अलग था। सामाजिक रूप से, इसने समाज में ऊँच-नीच को बढ़ाया, और आर्थिक रूप से, खेती और कर वसूली को प्रभावित किया। 18वीं सदी में मुगल साम्राज्य के टूटने और अंग्रेजी शासन के आने से जागीरदारी खत्म हो गई, और जमींदारी जैसी नई व्यवस्थाएँ शुरू हुईं। यह पत्र भारत की

जागीरदारी को यूरोप की सामंती व्यवस्था और अन्य एशियाई व्यवस्थाओं (जैसे, ओटोमन की तिमार) से भी तुलना करता है। अंत में, यह व्यवस्था भारत के इतिहास में सत्ता और संसाधनों के बंटवारे को समझने के लिए बहुत जरूरी मानी गई है। यह शोध भविष्य में क्षेत्रीय और सामाजिक पहलुओं पर और अध्ययन के लिए रास्ता भी दिखाता है।

परिचयात्मक : जागीरदारी व्यवस्था मध्यकालीन भारत की एक ऐसी सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक व्यवस्था थी, जिसने सामंती ढांचे को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस व्यवस्था में शासक अपने विश्वसनीय सामंतों, सैन्य अधिकारियों या प्रशासकों को भूमि के टुकड़े, जिन्हें 'जागीर' कहा जाता था, प्रदान करता था। बदले में, जागीरदार शासक को सैन्य सहायता, कर वसूली और स्थानीय प्रशासन चलाने की जिम्मेदारी निभाते थे। जागीरदार को जागीर से होने वाली आय का उपयोग अपने और अपनी सेना के भरण-पोषण के लिए करना होता था। यह व्यवस्था न केवल शासन का एक तरीका थी, बल्कि समाज में सत्ता, संपत्ति और संसाधनों के बंटवारे का आधार भी थी। जागीरदारी ने शासक और जागीरदारों के बीच एक मजबूत गठबंधन बनाया, जिसने मध्यकालीन भारत की राजनीतिक स्थिरता और आर्थिक संरचना को प्रभावित किया। हालांकि, यह व्यवस्था समय और क्षेत्र के अनुसार बदलती रही, जिसके कारण इसके स्वरूप में विविधता देखने को मिलती है।

जागीरदारी व्यवस्था की जड़ें प्राचीन भारत में भूमि अनुदान की परंपरा में पाई जा सकती हैं, जहां राजा ब्राह्मणों या मंदिरों को भूमि दान करते थे। लेकिन इसका व्यवस्थित रूप दिल्ली सल्तनत (13वीं सदी) के दौरान इक्ता प्रणाली के रूप में सामने आया। इक्ता प्रणाली में सुल्तान अपने अधिकारियों को भूमि का एक हिस्सा देता था, जिससे वे कर वसूलते थे और सैन्य सेवा प्रदान करते थे। यह प्रणाली सैन्य और प्रशासनिक जरूरतों को पूरा करने का एक प्रभावी तरीका थी। मुगल काल में, विशेष रूप से अकबर के शासनकाल में, जागीरदारी व्यवस्था को और परिष्कृत किया गया। मुगल शासकों ने जागीरदारी को मनसबदारी प्रणाली के साथ जोड़ा, जिसमें जागीरदारों को 'मनसब' (रैंक) के आधार पर जागीरें दी जाती थीं। यह व्यवस्था केंद्रीकृत शासन को मजबूत करने और साम्राज्य के विस्तार में सहायक थी।

जागीरदारी का स्वरूप क्षेत्रीय स्तर पर भी भिन्न था। उदाहरण के लिए, राजस्थान में जागीरदारी स्थानीय राजपूत सामंतों की परंपराओं से प्रभावित थी, जबकि बंगाल में यह अधिकतर कर वसूली पर केंद्रित थी। दक्कन में, मुगल और स्थानीय सल्तनतों के बीच सत्ता संघर्ष के कारण जागीरदारी का रूप जटिल रहा।

मध्य प्रदेश में जागीरदारी प्रथा का विकास विशेष रूप से मुगल और मराठा शासन के दौरान हुआ। इस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण यहाँ की भूमि व्यवस्था में जागीरदारी ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। शासकों द्वारा अपने विश्वासपात्र अधिकारियों, सैनिकों तथा दरबारी व्यक्तियों को पारिश्रमिक या सेवा के बदले में भूमि का अनुदान दिया जाता था, जिसे जागीर कहा जाता था। इन जागीरदारों को भूमि पर राजस्व वसूली तथा प्रशासनिक अधिकार भी प्रदान किए जाते थे।

मराठा शासन के दौरान मध्य प्रदेश के बड़े हिस्से जैसे मालवा, निमाड़, बुंदेलखंड और महाकौशल क्षेत्र में जागीरदारी प्रथा और अधिक सशक्त हो गई। मराठों ने अपने सरदारों को युद्ध में सेवाओं के बदले भूमि प्रदान की और इन जागीरदारों ने किसानों से कर वसूलना आरंभ किया। कई स्थानों पर ये जागीरदार अर्ध-स्वायत्त शासकों की तरह कार्य करने लगे, जिससे ग्रामीण जनता पर अत्याचार भी बढ़ने लगे। विशेष रूप से बुंदेलखंड क्षेत्र में अनेक छोटे-छोटे जागीरदारों का उदय हुआ जिन्होंने अपनी सेना और किले भी बनाए।

ब्रिटिश काल में भी मध्य प्रदेश में जागीरदारी प्रथा को संरक्षित रखा गया। अंग्रेजों ने अपनी राजनीतिक और प्रशासनिक नीतियों के तहत कई जागीरदारों को वफादारी के बदले में अधिकार सौंपे। इस कारण से मध्य प्रदेश में अंग्रेजी शासन के दौरान भी जागीरदारों की स्थिति सुदृढ़ बनी रही। मालवा क्षेत्र में होल्कर और निमाड़ क्षेत्र में गायकवाड़ जैसे मराठा शासकों के अधीन जागीरें संचालित होती रहीं। इन क्षेत्रों में कृषकों को दोहरा कर देना पड़ता था- एक ओर ब्रिटिश सरकार को और दूसरी ओर जागीरदार को।

जागीरदारी प्रथा के कारण मध्य प्रदेश की ग्रामीण जनता आर्थिक रूप से शोषण का शिकार बनी। किसान हमेशा जागीरदारों के कर और अत्याचारों के नीचे दबे रहते थे। खेती में सुधार नहीं हो पाया और भूमि पर स्थायित्व की कमी रही। शिक्षा, स्वास्थ्य और आधारभूत संरचना का विकास भी प्रभावित हुआ क्योंकि जागीरदारों का मुख्य उद्देश्य केवल राजस्व संग्रहण तक सीमित था, न कि सामाजिक कल्याण।

इस प्रकार जागीरदारी का स्वरूप क्षेत्रीय स्तर पर अलग-अलग था। उत्तर भारत में, विशेष रूप से दिल्ली और आसपास के क्षेत्रों में, इक्ता प्रणाली सैन्य प्रशासन पर केंद्रित थी। यहाँ इक्ता धारक ज्यादातर तुर्की या अफगानी मूल के सैन्य अधिकारी थे। दक्कन में, जहां बहमनी सल्तनत और अन्य स्थानीय शासकों का प्रभाव था, इक्ता प्रणाली स्थानीय सामंतों और सैन्य जरूरतों के साथ मिश्रित थी। यहाँ इक्ता अक्सर सैन्य अभियानों के लिए दी जाती थी। पूर्वी भारत, जैसे बंगाल में, इक्ता प्रणाली का उपयोग मुख्य रूप से कर वसूली और स्थानीय शासकों को नियंत्रित करने के लिए किया जाता था। बंगाल की उपजाऊ जमीन और व्यापारिक महत्व ने इसे राजस्व का बड़ा स्रोत बनाया। मध्य प्रदेश में भी जागीरदारी व्यवस्था का स्वरूप भिन्न था जिसकी विवेचना पूर्व में की जा चुकी है।

जागीरदारी का उद्भव भारत की सामंती व्यवस्था को समझने की नींव है। यह प्रणाली सैन्य, प्रशासनिक और आर्थिक जरूरतों को पूरा करने का एक प्रभावी तरीका थी, लेकिन इसने सामाजिक असमानता और शोषण को भी बढ़ावा दिया। दिल्ली सल्तनत के बाद मुगल काल में यह व्यवस्था और परिष्कृत हुई, जिसने भारतीय इतिहास में जागीरदारी के महत्व को और गहरा किया।

इस व्यवस्था ने न केवल शासकों और जागीरदारों के बीच, बल्कि जागीरदारों और किसानों के बीच भी एक जटिल रिश्ता बनाया। जागीरदारों को किसानों से कर वसूलने का अधिकार था, जिसके कारण कई बार शोषण और असंतोष की स्थिति भी उत्पन्न हुई।

भारत में मुगल साम्राज्य के पतन के साथ 18वीं सदी में जागीरदारी व्यवस्था कमजोर होने लगी। अंग्रेजों के आने और नई राजस्व प्रणालियों, जैसे स्थायी बंदोबस्त, के लागू होने से जागीरदारी धीरे-धीरे जमींदारी और ताल्लुकेदारी जैसी व्यवस्थाओं में बदल गई। फिर भी, जागीरदारी का प्रभाव भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था पर लंबे समय तक रहा।

मुख्य शब्द : जागीरदारी, सामंतवाद, इक्ता, मनसबदारी, मुगल, राजस्व, क्षेत्रीय विविधता।

शोध उद्देश्य

1. जागीरदारी व्यवस्था की शुरुआत और इसके ऐतिहासिक विकास को समझना।
2. जागीरदारी के सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक प्रभावों का विश्लेषण करना।
3. जागीरदारी के पतन के कारणों और इसके बाद की व्यवस्थाओं का मूल्यांकन करना।

शोध पद्धति : शोध का आधार ऐतिहासिक तथ्यों, पुराने दस्तावेजों और विद्वानों के लेखों पर आधारित है। प्राथमिक स्रोतों के रूप में मध्यकालीन भारत के दस्तावेज, जैसे फरमान, राजस्व रिकॉर्ड आदि शामिल हैं। राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, और कुछ क्षेत्रीय संग्रहों से जागीरदारी से जुड़े पत्र, आदेश और प्रशासनिक रिकॉर्ड लिए गए हैं। इसके अलावा, द्वितीयक स्रोतों का भी गहराई से अध्ययन किया गया है। इसमें इतिहासकारों की पुस्तकें और लेख शामिल हैं, जैसे इरफान हबीब की द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया और सतीश चंद्रा की मध्यकालीन भारत। जागीरदारी को वैश्विक संदर्भ में समझने के लिए यूरोप और एशिया की सामंती व्यवस्थाओं पर लिखे विदेशी लेखों का अध्ययन किया गया है।

साहित्य समीक्षा : जागीरदारी व्यवस्था मध्यकालीन भारत की एक महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक और प्रशासनिक व्यवस्था थी, जिस पर कई इतिहासकारों और विद्वानों ने गहन अध्ययन किया है। इस विषय पर उपलब्ध किताबें और पत्रिकाएँ इस व्यवस्था के उद्भव, विकास, और प्रभावों को समझने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। नीचे कुछ प्रमुख किताबों और पत्रिकाओं की समीक्षा दी गई है, जो जागीरदारी व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती हैं।

इरफान हबीब: द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया (1963)

इरफान हबीब की यह किताब मुगल काल की जागीरदारी व्यवस्था को समझने के लिए एक आधारभूत स्रोत है। लेखक ने जागीरदारी को कृषि अर्थव्यवस्था और सामंती ढांचे के संदर्भ में विश्लेषित किया है। यह पुस्तक जागीरदारी के आर्थिक प्रभावों, जैसे कर वसूली और कृषि उत्पादकता, पर विस्तार से चर्चा करती है।

सतीश चंद्रा: मध्यकालीन भारत: दिल्ली सल्तनत से मुगल तक (2007)

सतीश चंद्रा की यह किताब दिल्ली सल्तनत और मुगल काल की जागीरदारी व्यवस्था का सरल और व्यापक विवरण प्रस्तुत करती है। लेखक ने इक्ता प्रणाली से जागीरदारी के विकास और अकबर की मनसबदारी व्यवस्था के साथ इसके एकीकरण पर प्रकाश डाला है। किताब में जागीरदारी के सामाजिक और प्रशासनिक पहलुओं, जैसे जागीरदारों की भूमिका और किसानों पर प्रभाव, को समझाया गया है।

अफजल हुसैन: द नोबिलिटी अंडर अकबर एंड जहांगीर (1999)

अफजल हुसैन की यह किताब अकबर और जहांगीर के समय के जागीरदारों और कुलीन वर्ग पर केंद्रित है। लेखक ने जागीरदारी को सामंती सत्ता और शाही प्रशासन के बीच एक कड़ी के रूप में देखा है। किताब में प्रमुख जागीरदारों, जैसे बैरम खान और राजा भगवान दास, के उदाहरणों के जरिए उनके कर्तव्यों और प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। हुसैन ने प्राथमिक स्रोतों, जैसे अकबरनामा, का उपयोग करके जागीरदारी की संरचना को समझाया है। यह किताब जागीरदारी के व्यक्तिगत और पारिवारिक पहलुओं पर प्रकाश डालती है, जो इसे अनूठा बनाती है।

ए.एम. खुसरो: इकोनॉमिक एंड सोशल इफेक्ट्स ऑफ जागीरदारी एबॉलिशन एंड लैंड रिफॉर्म्स इन हैदराबाद (1958)

यह किताब जागीरदारी के अंत और इसके सामाजिक-आर्थिक प्रभावों पर केंद्रित है, विशेष रूप से हैदराबाद क्षेत्र में। खुसरो ने आजादी के बाद जागीरदारी के खात्मे और भूमि सुधारों का विश्लेषण किया है। पुस्तक में बताया गया है कि जागीरदारी ने किसानों पर भारी बोझ डाला और इसका अंत ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए जरूरी था। यह किताब आधुनिक संदर्भ में जागीरदारी के प्रभाव को समझने के लिए उपयोगी है।

शोध से प्राप्त परिणाम

जागीरदारी व्यवस्था का उद्भव : जागीरदारी व्यवस्था मध्यकालीन भारत की एक ऐसी सामाजिक-आर्थिक और प्रशासनिक व्यवस्था थी, जिसने सामंती ढांचे को मजबूत किया और शासन, सैन्य संगठन तथा राजस्व संग्रह को व्यवस्थित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस व्यवस्था का उद्भव प्राचीन भारत की भूमि अनुदान प्रणाली से शुरू हुआ, जो धीरे-धीरे दिल्ली सल्तनत के दौरान इक्ता प्रणाली के रूप में विकसित हुआ। जागीरदारी की शुरुआत के पीछे सैन्य, प्रशासनिक और आर्थिक जरूरतें थीं, जिन्होंने इसे विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग स्वरूप दिया।

जागीरदारी की जड़ें प्राचीन भारत में भूमि अनुदान की परंपरा में मिलती हैं। गुप्त काल (4वीं-6वीं सदी) और उसके बाद के समय में राजा ब्राह्मणों, मंदिरों और कभी-कभी सैन्य अधिकारियों को जमीन दान करते थे। ये अनुदान धार्मिक, सामाजिक या प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए दिए जाते थे। उदाहरण के लिए, गुप्तकालीन अभिलेखों में ब्राह्मणों को दी गई जमीन का जिक्र मिलता है, जिसे 'अग्निहोत्र' या धार्मिक कार्यों के लिए इस्तेमाल किया जाता था। प्रारंभिक मध्यकाल (7वीं-12वीं सदी) में पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूट जैसे राजवंशों ने भी स्थानीय शासकों और सामंतों को जमीन देकर उनकी वफादारी हासिल की। यह प्रणाली जागीरदारी का प्रारंभिक रूप थी, जो सैन्य और प्रशासनिक सहायता के बदले जमीन देने पर आधारित थी। हालांकि, यह प्रणाली उस समय व्यवस्थित नहीं थी और क्षेत्रीय स्तर पर भिन्न थी।

जागीरदारी का अधिक व्यवस्थित रूप दिल्ली सल्तनत (1206-1526) के दौरान इक्ता प्रणाली के साथ सामने आया। इक्ता एक ऐसी व्यवस्था थी, जिसमें सुल्तान अपने सैन्य अधिकारियों और प्रशासकों को जमीन का एक हिस्सा देता था। इस जमीन से होने वाली आय का इस्तेमाल सैनिकों के भरण-पोषण और प्रशासनिक खर्चों के लिए किया जाता था। बदले में, इक्ता धारक (मुक्ती) सुल्तान को सैन्य सहायता और कर वसूली में मदद करते थे। यह प्रणाली तुर्की और मध्य एशियाई शासकों की परंपराओं से प्रेरित

थी। इल्तुतमिश और बलबन जैसे सुल्तानों ने इक्ता को और व्यवस्थित किया। इक्ता अक्सर अस्थायी होती थी और सुल्तान की मर्जी पर निर्भर करती थी, जिससे केंद्रीकृत शासन को मजबूती मिली।

जागीरदारी व्यवस्था उत्पत्ति के प्रमुख कारक : जागीरदारी व्यवस्था की शुरुआत के पीछे कई प्रमुख कारक थे। पहला, सैन्य और प्रशासनिक आवश्यकताएँ थीं। मध्यकालीन भारत में बड़े साम्राज्यों को बनाए रखने के लिए मजबूत सेना और स्थानीय प्रशासन की जरूरत थी। इक्ता और बाद में जागीरदारी ने शासकों को बिना नकद भुगतान के सैन्य और प्रशासनिक सहायता सुनिश्चित करने का तरीका दिया। दूसरा, केंद्रीकृत शासन और कर संग्रह की आवश्यकता थी। सुल्तानों को अपनी सत्ता बनाए रखने और साम्राज्य के खर्चों को पूरा करने के लिए नियमित राजस्व चाहिए था। इक्ता धारकों को कर वसूलने की जिम्मेदारी देकर शासक अप्रत्यक्ष रूप से स्थानीय स्तर पर नियंत्रण रखते थे।

मुगल काल में जागीरदारी का विकास : मुगल काल (1526-1857) में जागीरदारी व्यवस्था भारतीय इतिहास में अपने चरम पर पहुंची। दिल्ली सल्तनत की इक्ता प्रणाली से शुरू हुई यह व्यवस्था मुगल शासकों, विशेष रूप से अकबर के समय, में अधिक व्यवस्थित और परिष्कृत हो गई। जागीरदारी मुगल साम्राज्य की सामंती संरचना, सैन्य संगठन और आर्थिक ढांचे की रीढ़ थी। यह शासकों और जागीरदारों के बीच एक जटिल रिश्ते का आधार थी, जो राजस्व संग्रह, प्रशासन और सैन्य सहायता पर टिकी थी। मुगल नीतियों, क्षेत्रीय विविधताओं और शासकों की भूमिका ने जागीरदारी को एक गतिशील और बहुआयामी व्यवस्था बनाया।

जागीरदार मुगल साम्राज्य के कुलीन वर्ग का हिस्सा थे, जिन्हें शासक द्वारा जमीन (जागीर) दी जाती थी। उनकी मुख्य जिम्मेदारी थी शासक को सैन्य सहायता देना, जिसमें सैनिकों और घुड़सवारों की व्यवस्था करना शामिल था। इसके अलावा, वे अपनी जागीर में कर वसूलते थे और स्थानीय प्रशासन चलाते थे। जागीरदारों को जागीर से होने वाली आय का उपयोग अपनी सेना, प्रशासनिक खर्चों और व्यक्तिगत जरूरतों के लिए करना होता था। वे शासक के प्रति वफादार रहने के लिए बाध्य थे और समय-समय पर दरबार में हाजिरी देनी पड़ती थी।

अकबर ने मनसबदारी प्रणाली शुरू की, जो जागीरदारी को और व्यवस्थित करने का एक अनोखा तरीका था। मनसबदारी में हर जागीरदार को एक 'मनसब' (रैंक) दिया जाता था, जो उनकी सैन्य और प्रशासनिक जिम्मेदारियों को दर्शाता था। मनसब दो हिस्सों में बंटा था: 'जात' (व्यक्तिगत रैंक) और 'सवार' (सैनिकों की संख्या)। जागीर की आय मनसब के आधार पर तय होती थी। इस प्रणाली ने जागीरदारी को केंद्रीकृत शासन से जोड़ा और जागीरदारों की स्वायत्तता को नियंत्रित किया। इससे शासक को साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों पर बेहतर नियंत्रण मिला।

जागीरदारों का मुख्य काम अपनी जागीर से राजस्व वसूलना था। इसके लिए वे स्थानीय अधिकारियों, जैसे चौधरी और कानूनगो, की मदद लेते थे। जागीरदार जमीन की पैमाइश, फसल की निगरानी और कर निर्धारण में शामिल होते थे। अकबर की 'जाब्ती' प्रणाली ने राजस्व संग्रह को और व्यवस्थित किया, जिसमें जमीन की उत्पादकता के आधार पर कर तय किया जाता था। जागीरदारों को शासक को एक निश्चित हिस्सा देना होता था, जबकि बाकी उनकी आय होती थी।

मुगल जागीरें दो प्रकार की थीं। स्थानांतरणीय जागीरें अस्थायी होती थीं और शासक इन्हें किसी भी समय बदल सकता था। इससे जागीरदारों की स्वायत्तता सीमित रहती थी। गैर-स्थानांतरणीय जागीरें, जिन्हें 'वतन जागीर' कहा जाता था, स्थायी होती थीं और अक्सर स्थानीय राजपूतों या पुराने सामंतों को दी जाती थीं। ये जागीरें राजस्थान जैसे क्षेत्रों में आम थीं, जहां स्थानीय शासकों की वफादारी जरूरी थी।

अकबर ने जागीरदारी को व्यवस्थित करने में सबसे बड़ा योगदान दिया। उनकी मनसबदारी और जाब्ती प्रणालियों ने जागीरदारी को केंद्रीकृत और पारदर्शी बनाया। उन्होंने जागीरदारों की निगरानी के लिए 'मिर्बख्शी' जैसे अधिकारियों की नियुक्ति की। जहांगीर और शाहजहाँ ने अकबर की नीतियों को जारी रखा, लेकिन औरंगजेब के समय जागीरदारी में समस्याएँ बढ़ीं। साम्राज्य के विस्तार और सैन्य खर्चों के कारण जागीरों की कमी हो गई, जिससे जागीरदारों में असंतोष बढ़ा। औरंगजेब की कठोर नीतियों और लगातार युद्धों ने जागीरदारी व्यवस्था को कमजोर किया, जिसका असर मुगल साम्राज्य के पतन में दिखा।

जागीरदारी का विकास मुगल काल में साम्राज्य की ताकत और सीमाओं दोनों को दर्शाता है। यह व्यवस्था शासन और अर्थव्यवस्था को चलाने का एक प्रभावी तरीका थी, लेकिन इसकी जटिलताएँ और क्षेत्रीय विविधताएँ अंततः इसके पतन का कारण बनीं।

जागीरदारी व्यवस्था का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव : जागीरदारी व्यवस्था मध्यकालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संरचना को गहराई से प्रभावित करने वाली एक महत्वपूर्ण प्रणाली थी। दिल्ली सल्तनत से शुरू होकर मुगल काल तक विकसित हुई इस व्यवस्था ने न केवल शासन और राजस्व संग्रह को आकार दिया, बल्कि समाज के विभिन्न वर्गों, खासकर जागीरदारों, किसानों और स्थानीय समुदायों के बीच संबंधों को भी परिभाषित किया। इसके सामाजिक प्रभावों ने सामंती ढांचे को मजबूत किया, आर्थिक प्रभावों ने कृषि और व्यापार को प्रभावित किया, और सांस्कृतिक प्रभावों ने स्थानीय कला और परंपराओं को समृद्ध किया।

सामाजिक प्रभाव : सामंती संरचना और सामाजिक स्तरीकरण: जागीरदारी व्यवस्था ने भारत में सामंती संरचना को गहरा किया और समाज में ऊँच-नीच को बढ़ावा दिया। जागीरदार, जो कुलीन वर्ग का हिस्सा थे, सामाजिक और राजनीतिक सत्ता के केंद्र थे। वे शासक के प्रतिनिधि के रूप में अपनी जागीरों में शासन करते थे और स्थानीय स्तर पर बहुत प्रभाव रखते थे। इसके विपरीत, किसान और मजदूर, जो जागीरदारी अर्थव्यवस्था का आधार थे, सामाजिक सीढ़ी में सबसे नीचे थे। जागीरदारी ने सामाजिक स्तरीकरण को और सख्त किया, जहां जन्म, जाति और आर्थिक स्थिति ने लोगों की सामाजिक हैसियत तय की। उदाहरण के लिए, राजस्थान में राजपूत जागीरदारों ने अपनी जागीरों में स्थानीय समुदायों पर सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभाव डाला, जिससे उनकी प्रभुता और बढ़ी।

जागीरदारों और किसानों के बीच संबंध: जागीरदार और किसान एक जटिल और असमान रिश्ते से बंधे थे। जागीरदार किसानों से कर वसूलते थे, जो अक्सर फसल का बड़ा हिस्सा होता था। बदले में, जागीरदार किसानों को सुरक्षा और जमीन पर खेती का अधिकार देते थे। हालांकि, यह रिश्ता अक्सर शोषणकारी था। कई मामलों में, जागीरदारों ने भारी कर लगाए, जिससे किसान

कर्ज में डूब गए। मुगल काल में अकबर की जाब्ती प्रणाली ने कर संग्रह को कुछ हद तक व्यवस्थित किया, लेकिन औरंगजेब के समय बढ़ते सैन्य खर्चों ने कर का बोझ बढ़ा दिया। कुछ क्षेत्रों, जैसे बंगाल, में जागीरदारों और स्थानीय जमींदारों के बीच टकराव भी देखा गया। फिर भी, कुछ जागीरदारों ने अपने क्षेत्रों में कुएँ, तालाब और मंदिर बनवाकर किसानों का भला भी किया।

आर्थिक प्रभाव : कृषि उत्पादकता और राजस्व प्रणाली: जागीरदारी व्यवस्था का आधार कृषि था, और इसने कृषि उत्पादकता को कई तरह से प्रभावित किया। जागीरदारों को अपनी आय बढ़ाने के लिए खेती को बेहतर करना पड़ता था। अकबर के समय में शुरू हुई जाब्ती प्रणाली ने जमीन की पैमाइश और फसल के आधार पर कर निर्धारण को व्यवस्थित किया, जिससे कुछ हद तक उत्पादकता बढ़ी। हालांकि, भारी कर और जागीरदारों की मनमानी ने कई बार किसानों को खेती से दूर किया। उदाहरण के लिए, औरंगजेब के शासनकाल में बढ़ते करों और युद्धों ने कई क्षेत्रों में कृषि संकट पैदा किया। जागीरदारी ने राजस्व संग्रह को केंद्रीकृत करने में मदद की, लेकिन इसकी सफलता जागीरदारों की ईमानदारी और स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर थी।

स्थानीय और क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं पर प्रभाव: जागीरदारी ने स्थानीय और क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं को भी प्रभावित किया। जागीरदार अपनी आय का एक हिस्सा स्थानीय बाजारों में खर्च करते थे, जिससे कारीगरों, व्यापारियों और छोटे उद्यमियों को फायदा होता था। बंगाल जैसे समृद्ध क्षेत्रों में, जागीरदारी ने व्यापार और कपड़ा उद्योग को बढ़ावा दिया। लेकिन, जागीरदारों की अत्यधिक कर वसूली और सैन्य खर्चों ने कई बार स्थानीय अर्थव्यवस्था को कमजोर किया। दक्कन में, लगातार युद्धों और जागीरों के बार-बार स्थानांतरण ने आर्थिक अस्थिरता पैदा की। कुल मिलाकर, जागीरदारी ने क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं को जोड़ा, लेकिन इसने असमान विकास को भी बढ़ावा दिया।

सांस्कृतिक प्रभाव : स्थानीय संस्कृति और कला पर जागीरदारों का योगदान: जागीरदारों ने स्थानीय संस्कृति और कला को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अपनी जागीरों में, उन्होंने मंदिर, मस्जिद, किले और उद्यान बनवाए, जो स्थानीय परंपराओं और मुगल कला का मिश्रण दर्शाते हैं। राजस्थान में राजपूत जागीरदारों ने कला, संगीत और साहित्य को प्रोत्साहन दिया, जिसके परिणामस्वरूप राजपूती चित्रकला और स्थापत्य कला का विकास हुआ। बंगाल में, जागीरदारों ने स्थानीय बौद्ध और हिंदू परंपराओं के साथ इस्लामी संस्कृति के मेल को बढ़ावा दिया। मुगल दरबार की तरह, जागीरदारों ने भी कवियों, चित्रकारों और विद्वानों को संरक्षण दिया। उदाहरण के लिए, अकबर के समय के जागीरदारों ने फारसी और स्थानीय भाषाओं में साहित्य को प्रोत्साहित किया। हालांकि, यह सांस्कृतिक योगदान अक्सर कुलीन वर्ग तक सीमित था और आम जनता तक कम पहुंचता था।

जागीरदारी व्यवस्था का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव भारत के मध्यकालीन इतिहास को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। इसने सामंती ढांचे को मजबूत किया, लेकिन साथ ही सामाजिक असमानता और आर्थिक दबाव को भी बढ़ाया। सांस्कृतिक रूप से, इसने स्थानीय और क्षेत्रीय परंपराओं को समृद्ध किया, जो आज भी भारत की सांस्कृतिक धरोहर में दिखता है।

जागीरदारी व्यवस्था का पतन के कारण : जागीरदारी व्यवस्था, जो मध्यकालीन भारत की सामाजिक-आर्थिक और प्रशासनिक रीढ़ थी, 18वीं सदी में धीरे-धीरे कमजोर होकर लगभग समाप्त हो गई। दिल्ली सल्तनत की इक्ता प्रणाली से शुरू

होकर मुगल काल में अपने चरम पर पहुंची यह व्यवस्था मुगल साम्राज्य के विघटन, ब्रिटिश उपनिवेशवाद के उदय और नई राजस्व प्रणालियों के लागू होने के कारण पतन की ओर बढ़ी। इस पतन ने जागीरदारी को ताल्लुकेदारी और जमींदारी जैसी नई व्यवस्थाओं में बदल दिया, जिसने भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था को नए सिरे से आकार दिया।

18वीं सदी की शुरुआत में, मुगल साम्राज्य की केंद्रीय सत्ता कमजोर होने लगी, जिसका सीधा असर जागीरदारी व्यवस्था पर पड़ा। औरंगजेब की मृत्यु (1707) के बाद मुगल शासकों की कमजोर होती पकड़ और उत्तराधिकार के झगड़ों ने साम्राज्य को कई हिस्सों में बाँट दिया। जागीरदार, जो पहले शासक के प्रति वफादार रहते थे, अब स्वतंत्र रूप से कार्य करने लगे। कई जागीरदारों ने अपनी जागीरों को निजी संपत्ति की तरह मानना शुरू कर दिया और केंद्रीय सत्ता को कर देना बंद कर दिया। इसके साथ ही, क्षेत्रीय शक्तियों, जैसे मराठों, सिखों और अफगानों, के उभरने से जागीरदारी की संरचना और कमजोर हुई।

मुगल साम्राज्य का विघटन: मुगल साम्राज्य का विघटन जागीरदारी के पतन का सबसे बड़ा कारण था। औरंगजेब के लंबे शासनकाल में साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार और सैन्य खर्चों ने आर्थिक संकट पैदा किया। जागीरों की मांग बढ़ी, लेकिन उपलब्ध जमीन सीमित थी, जिससे जागीरदारों में असंतोष फैला। कमजोर मुगल सम्राटों, जैसे बहादुर शाह और फर्रुखसियार, के समय जागीरदारों पर नियंत्रण लगभग खत्म हो गया। कई जागीरदारों ने स्थानीय स्तर पर अपनी सत्ता स्थापित की और स्वतंत्र शासकों की तरह व्यवहार करने लगे। उदाहरण के लिए, बंगाल में मुर्शिद कुली खान और अवध में सआदत अली खान ने अपनी जागीरों को स्वायत्त क्षेत्रों में बदल दिया।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद और नई राजस्व प्रणालियों का उदय: 18वीं सदी के मध्य में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रभाव बढ़ने से जागीरदारी व्यवस्था को और झटका लगा। ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने नई राजस्व प्रणालियों को लागू किया, जो जागीरदारी के विपरीत थीं। 1793 में लॉर्ड कॉर्नवॉलिस द्वारा शुरू किया गया स्थायी बंदोबस्त इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। इस प्रणाली में जमींदारों को जमीन का स्थायी मालिक बनाया गया, और उन्हें निश्चित कर सरकार को देना होता था। जागीरदारों की अस्थायी और स्थानांतरणीय भूमिका को खत्म कर दिया गया। बंगाल, बिहार और उड़ीसा में लागू यह प्रणाली धीरे-धीरे अन्य क्षेत्रों में भी फैली। ब्रिटिश शासन ने जागीरदारों की सैन्य और प्रशासनिक शक्ति को कम किया, क्योंकि उनकी जरूरत अब औपनिवेशिक सेना और नौकरशाही ने पूरी कर दी थी।

क्षेत्रीय परिवर्तन: जागीरदारी से ताल्लुकेदारी और जमींदारी प्रणाली की ओर संक्रमण जागीरदारी का पतन क्षेत्रीय स्तर पर अलग-अलग रूपों में दिखा। बंगाल में, जागीरदारी स्थायी बंदोबस्त के तहत जमींदारी प्रणाली में बदल गई। स्थानीय जमींदार, जो पहले जागीरदारों के अधीन थे, अब ब्रिटिश शासन के प्रमुख राजस्व संग्राहक बन गए। अवध और हैदराबाद जैसे क्षेत्रों में, जागीरदारी ताल्लुकेदारी प्रणाली में बदली, जहां स्थानीय शासकों या ताल्लुकदारों ने जागीरदारों की जगह ली। ताल्लुकदारों को अक्सर ब्रिटिश शासन द्वारा मान्यता दी गई, बशर्ते वे कर और वफादारी दें। राजस्थान में, कुछ राजपूत जागीरदारों ने अपनी वतन जागीरों को बनाए रखा, लेकिन उनकी शक्ति ब्रिटिश संरक्षण पर निर्भर हो गई। दक्कन में, मराठा शासन और ब्रिटिश हस्तक्षेप ने जागीरदारी को पूरी तरह खत्म कर दिया, और नई प्रशासनिक व्यवस्थाएँ लागू हुईं।

जागीरदारी के पतन ने सामंती ढांचे को कमजोर किया और एक नई सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को जन्म दिया। हालांकि, इसने कुछ क्षेत्रों में जमींदारों और ताल्लुकदारों जैसे नए कुलीन वर्ग को मजबूत किया, जिन्होंने औपनिवेशिक शासन के तहत अपनी सत्ता बनाए रखी। जागीरदारी का अंत भारतीय ग्रामीण समाज में भूमि स्वामित्व और शक्ति संतुलन में बड़े बदलाव का प्रतीक था। यह पतन न केवल मुगल साम्राज्य की कमजोरी को दर्शाता है, बल्कि औपनिवेशिक शासन के आर्थिक और प्रशासनिक हस्तक्षेप को भी उजागर करता है।

निष्कर्ष : जागीरदारी व्यवस्था मध्यकालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक संरचना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थी, जिसने भारतीय इतिहास को गहरे रूप से प्रभावित किया। जागीरदारी की शुरुआत प्राचीन भारत में भूमि अनुदान की परंपरा से हुई, जो दिल्ली सल्तनत की इक्ता प्रणाली के रूप में व्यवस्थित हुई। मुगल काल में, खासकर अकबर के शासनकाल में, यह मनसबदारी प्रणाली के साथ परिष्कृत हुई। मध्य प्रदेश में, ग्वालियर और मालवा जैसे क्षेत्रों में जागीरदारी ने स्थानीय सामंतों और मुगल प्रशासन के बीच एक सेतु बनाया। बंगाल में यह राजस्व-केंद्रित थी, राजस्थान में राजपूत परंपराओं से प्रभावित थी, और दक्कन में सैन्य अभियानों से जुड़ी थी। अकबर की जाब्ती प्रणाली ने इसे व्यवस्थित किया, लेकिन औरंगजेब के समय जागीरों की कमी और सैन्य खर्चों ने इसे कमजोर किया। 18वीं सदी में मुगल साम्राज्य के विघटन और ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने जागीरदारी को जमींदारी और ताल्लुकेदारी में बदल दिया।

जागीरदारी ने भारतीय इतिहास में सत्ता, जमीन और संसाधनों के बंटवारे को परिभाषित किया। इसने सामंती ढांचे को मजबूत किया, जिसके अवशेष आज भी ग्रामीण भारत में दिखते हैं। मध्य प्रदेश में, मालवा और बुंदेलखंड के जागीरदारों ने स्थानीय शासन और संस्कृति को आकार दिया, जैसे कि ओरछा और रीवा की रियासतें। इस व्यवस्था ने शासकों और सामंतों के बीच जटिल रिश्ते बनाए, जो साम्राज्य के विस्तार और स्थानीय प्रशासन में महत्वपूर्ण थे। सामाजिक रूप से, इसने स्तरीकरण को गहराया, जहां जागीरदार कुलीन बने और किसान शोषण का शिकार हुए। आर्थिक रूप से, इसने कृषि उत्पादकता और राजस्व संग्रह को प्रभावित किया। सांस्कृतिक रूप से, जागीरदारों ने मंदिर, किले और कला को प्रोत्साहन दिया, जैसे मध्य प्रदेश में ओरछा के चित्रों और स्थापत्य में दिखता है। जागीरदारी का पतन एक बड़े सामाजिक-आर्थिक बदलाव का प्रतीक था, जिसने आधुनिक भारत की नींव रखी।

हालांकि जागीरदारी खत्म हो चुकी है, इसके अवशेष आधुनिक भारत में भूमि स्वामित्व और सामाजिक संरचना में दिखते हैं। मध्य प्रदेश में, बुंदेलखंड और मालवा जैसे क्षेत्रों में बड़े जमींदारों और प्रभावशाली परिवारों की मौजूदगी सामंती ढांचे की याद दिलाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि का असमान वितरण और स्थानीय सत्ता का केंद्रण जागीरदारी की विरासत को दर्शाता है। ब्रिटिश स्थायी बंदोबस्त ने जागीरदारों को जमींदारों में बदला, लेकिन सामाजिक असमानता बनी रही। मध्य प्रदेश में, जैसे ग्वालियर और रीवा में, पूर्व रियासतों के परिवार आज भी सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव रखते हैं। भूमि सुधार और सामाजिक समानता के मुद्दे जागीरदारी की ऐतिहासिक विरासत से जुड़े हैं, जो आज के नीति-निर्माण को प्रभावित करते हैं।

भविष्य के शोध के लिए सुझाव : जागीरदारी पर भविष्य के शोध के लिए कई संभावनाएँ हैं। क्षेत्रीय स्तर पर, मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड और मालवा जैसे क्षेत्रों में जागीरदारी के विशिष्ट स्वरूपों पर गहरा अध्ययन जरूरी है, जहां स्थानीय रियासतों ने अनूठी

भूमिका निभाई। लैंगिक आयाम भी महत्वपूर्ण हैं। जागीरदारी में महिलाओं की भूमिका, जैसे मालवा की रानियों या बुंदेलखंड की रानी लक्ष्मीबाई, पर शोध की कमी है। इसके अलावा, जागीरदारी के पर्यावरणीय प्रभाव, जैसे मध्य प्रदेश में खेती और जल प्रबंधन पर इसके असर, पर अध्ययन किया जा सकता है। डिजिटल अभिलेखागार और नए स्रोतों का उपयोग करके जागीरदारी के सामाजिक-आर्थिक प्रभावों को और गहराई से समझा जा सकता है।

जागीरदारी का अध्ययन हमें भारत के अतीत को समझने और वर्तमान सामाजिक-आर्थिक मुद्दों, विशेष रूप से मध्य प्रदेश जैसे क्षेत्रों में, पर नया दृष्टिकोण देता है। यह शोध ऐतिहासिक तथ्यों को उजागर करता है और भविष्य के अध्ययनों के लिए मजबूत आधार प्रदान करता है।

संदर्भ सूची

1. आलम, एम. (1986) द क्राइसिस ऑफ़ एम्पायर इन मुगल नॉर्थ इंडिया: अवध एंड द पंजाब, 1707-48, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. अली, एम. ए. (1966) द मुगल नोबिलिटी अंडर औरंगजेब, एशिया पब्लिशिंग हाउस।
3. आशेर, सी. बी., व तालबोत, सी. (2006) इंडिया बिफोर यूरोप, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. बाबर, ज. एम. (1922) बाबरनामा (ए. एस. बेवरिज, अनु.) लुजैक एंड कंपनी।
5. ब्लेक, एस. पी. (1991) शाहजहानाबाद: द सॉवरेन सिटी इन मुगल इंडिया, 1639-1739. कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. चंद्रा, स. (2007) मेडिवल इंडिया: फ्रॉम सल्तनत टू द मुगल्स, ओरिएंट ब्लैकस्वान। ईटन, आर. एम. (1993) द राइज ऑफ़ इस्लाम एंड द बंगाल फ्रंटियर, 1204-1760, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफोर्निया प्रेस।
7. फारूकी, ए. (2011) सिंधियास एंड द राज: प्रिंसली ग्वालियर, 1800-1850, प्राइमस बुक्स।
8. गॉर्डन, एस. (1994) द मराठास, 1600-1818. कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस। हबीब, इ. (1999) द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ़ मुगल इंडिया, 1556-1707 (दूसरा संस्करण) ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. हसन, एफ. (2004). स्टेट एंड लोकैलिटी इन मुगल इंडिया: पावर रिलेशन्स इन वेस्टर्न इंडिया, c. 1572-1730, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. हुसैन, ए. (1999) द नोबिलिटी अंडर अकबर एंड जहांगीर: अ स्टडी ऑफ़ फैमिली ग्रुप्स, मनोहर पब्लिकेशंस।
11. खुसरो, ए. एम. (1958) इकॉनमिक एंड सोशल इफेक्ट्स ऑफ़ जागीरदारी एबॉलिशन एंड लैंड रिफॉर्म्स इन हैदराबाद, मंजु प्रकाशन।
12. कोल्फ, डी. एच. ए. (1990) नौकर, राजपूत, एंड सिपाही: द एथनोहिस्ट्री ऑफ़ द मिलिट्री लेबर
13. मार्केट इन हिंदुस्तान, 1450-1850. कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
14. कुमार, एस. (2007) द इमर्जेन्स ऑफ़ द दिल्ली सल्तनत, 1192-1286, परमानेंट ब्लैक।
15. मार्शल, पी. जे. (1987) बंगाल: द ब्रिटिश ब्रिजहेड, ईस्टर्न इंडिया 1740-1828, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

16. मेटकाफ, टी. आर. (1994) लैंड, लैंडलॉर्ड्स, एंड द ब्रिटिश राज: नॉर्दर्न इंडिया इन द नाइनटीन्थ सेंचुरी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
17. मूसवी, एस. (1987) द इकॉनमी ऑफ़ द मुगल एम्पायर, c. 1595: अ स्टैटिस्टिकल स्टडी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
18. नेशनल आर्काइव्स ऑफ़ इंडिया. (s.d.). मुगल प्रशासनिक दस्तावेज और फरमान (16वीं-18वीं सदी), नई दिल्ली।
19. कुरैशी, आई. एच. (1966) द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ़ द मुगल एम्पायर, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कराची प्रेस।
20. रायचौधुरी, टी. (1982) द स्टेट एंड द इकॉनमी: द मुगल एम्पायर. में टी. रायचौधुरी व इ. हबीब (संपा.), द कैंब्रिज इकॉनमिक हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया (खंड 1, पृ. 172-193), कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
21. रिचर्ड्स, जे. एफ. (1993) द मुगल एम्पायर, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
22. सरकार, जे. (1984) अ हिस्ट्री ऑफ़ जयपुर, 1503-1938, ओरिएंट लॉन्गमैन।
23. शर्मा, जी. डी. (1977) राजपूत पॉलिटी: अ स्टडी ऑफ़ पॉलिटिक्स एंड एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ़ द स्टेट ऑफ़ मारवाड़, 1638-1749, मनोहर पब्लिकेशंस।
24. सिद्दीकी, एन. ए. (1970) लैंड रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन अंडर द मुगल्स, 1700-1750, एशिया पब्लिशिंग हाउस।
25. सिंह, सी. (1991) रिजन एंड एम्पायर: पंजाब इन द सेवेंटीन्थ सेंचुरी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
26. स्टीन, बी. (1985) स्टेट फॉर्मेशन एंड इकॉनमी रिकन्सिडर्ड: पार्ट वन. मॉडर्न ऑफ़ एशियन स्टडीज, 19(3), 387-413
27. स्ट्रूसैंड, डी. ई. (1989) द फॉर्मेशन ऑफ़ द मुगल एम्पायर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
28. त्रिपाठी, आर. पी. (1936) सम आस्पेक्ट्स ऑफ़ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन, सेंट्रल बुक डिपो।
29. विंक, ए. (1986) लैंड एंड सॉवरेन्टी इन इंडिया: एग्रेरियन सोसाइटी एंड पॉलिटिक्स अंडर द एटीन्थ-सेंचुरी मराठा स्वराज्य, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।